# दिव्योपदेश

## ELIXIR DIVINE

मूल लेखक
श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अनुवादक
श्री ज्ञानेश्वर शास्त्री वर्मा

प्रकाशक :
योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडमी
(डिवाइन लाइफ सोसाइटी)
पो० शिवानन्दनगर,
जिला—टिहरी-गढ़वाल (यू०पी०) हिमालय

मूल्य ] १९६५ [ १ रू०

# दिव्योपदेश

ELIXIR DIVINE

का अविकल अनुवाद

मूल लेखक

**श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती**

अनुवादक

**श्री ज्ञानेश्वर शास्त्री वर्मा**

प्रकाशक :

योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडमी

(डिवाइन लाइफ सोसाइटी)

पो० शिवानन्दनगर,

जिला–टिहरी-गढ़वाल (यू०पी०) हिमालय

मूल्य ] १९६५ [ १ रू०

## प्रकाशकीय

महामहिम श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का सम्पूर्ण वाङ्मय आध्यात्मिक तथा साधनामय जीवन का समुज्ज्वल स्वरूप है। वे अध्यात्म तत्त्व को जीवन में सक्रिय रूप देने के हिमायती थे—न कि इसे सिद्धान्त मान कर ही सन्तोष कर लेने के—जैसा कि पाश्चात्य दार्शनिक मानते हैं। उन्होंने हमेशा कहा कि ईश्वर-साक्षात्कार जीवन का चरम लक्ष्य है। मनुष्य-योनि में ही यह सम्भव हैं, अतः इस जन्म को निरर्थक नहीं जाने देना चाहिए। मनुष्य यथार्थ रूप से ईश्वर का अविभाज्य अङ्ग है और उसका लक्ष्य है दिव्यानन्द की अभिलब्धि। जीवन कर्मयोग के लिए सुचारु क्षेत्र है—यहाँ प्रत्येक कर्म पूजा मानी जाती है और प्रत्येक जीव विराट् परमात्मा की प्रतिकृति।

प्रस्तुत पुस्तिका स्वामी जी की अन्तिम कृति है जिसे उन्होंने आखरी वार बीमार होने से कुछ दिन पूर्व पूरा किया था। इसमें स्वामी जी ने यही समझाया है कि मानव जीवन उस परम पिता परमात्मा की दिव्य अभि-व्यक्ति है—इसे सम्यक् दृष्टि और सम्यक् ज्ञान से जाँचना—परखना चाहिए। दुःख-द्वन्द्वादि तो

अविद्या के परिणाम हैं। ईश्वर को सकल प्राणियों में अनुस्यूत न समझना ही अविद्या है। ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक रूप में जान लेना ही अविद्या से मुक्ति और परम पद की प्राप्ति है।

हमें पूर्ण आशा और विश्वास है कि समग्र पाठकगण इसका आदर करेंगे और इसमें निहित उपदेशों को जीवन में उतारने का यत्न करेंगे।

—प्रकाशक

## अपनी बात

आज श्री गुरुदेव का भौतिक शरीर कलेवर जबकि दृश्य जगत् से तिरोहित हो चुका है, हम साधकवृन्द के लिए उनकी ओजमयी वाणी ही एकमात्र सहारा है जिसे ग्रहण कर हम बहुकाल तक संसार में रहते हुए भी संसार के दोष-निकायों से पृथक् रह सकते हैं।

उनके उपदेश परक सुविशाल साहित्य से यह छोटी-सी पुस्तिका लेकर मैंने इसका अनुवाद प्रस्तुत किया है। यह पुस्तिका "नाविक के तीर की" उपमा सार्थक करती है और साधक के अधिमानस पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। मैं आशासंकुल हृदय से इसे साधक बन्धुओं के प्रति समर्पित करता हूँ कि वे इससे अधिकाधिक लाभ उठाने का यत्न करेंगे।

"इण्डियन एक्सप्रेस," —ज्ञानेश्वर शास्त्री वर्मा
नई दिल्ली।
१५–५–६४

# अपने जीवन से मैंने क्या सीखा

मेरा प्रारब्ध कुछ इस तरह अपने अनकूल रहा कि बहुत छोटी अवस्था से ही मैं संसार की असारता पर गौर करने लगा था। मैं बहुत गम्भीर होकर सोचता था कि अपने आसपास जो यह मायावी बाजार है, इसका संयोजक और नियामक कौन है ? लौकिक सत्ता से परे उस पारमार्थिक सत्ता की जानकारी के लिये मेरे मन में इतनी तीव्र उत्कण्ठा थी कि मैं इसकी अवहेलना नहीं कर सका। मनुष्य अपने क्षणभङ्गुर जीवन से अन्यमनस्क जबकि उच्चतर लक्ष्य की ओर निहारता है तो वह लक्ष्य होता है अध्यात्म, और वह भावना होती है मुमुक्षुत्व की भावना।

जबकि मनुष्य कामक्रोधादि विकारों के चक्रव्यूह में पड़ जाता है, उसे अपनी सुध नहीं रहती। भौतिकवाद और संशयवाद उस पर छा जाते हैं। वह जरा-जरा सी बातों में अपना आपा खो बैठता है। उसका जीवन दुःखी हो जाता है। चिकित्सा-व्यवसाय में रहकर मैंने संसार के 'दुःखालय' स्वरूप को बहुत कुछ समझा बूझा। मैंने जो 'सर्वं दुःखम् विवेकिनः'—विवेकवान् व्यक्ति के लिये संसार में सब कुछ दुःख ही है—की सूक्ति सुन रखी थी, उसे आँखों से गुजरते देखा। मुझे

ईश्वर की कृपा से अन्तर्दृष्टि मिली और मैं बार-बार सोचने लगा कि वैसा कोई स्थान अवश्य होना चाहिए जहाँ दैवी सम्पदायें अपना मूर्त्त रूप ले रही हों, जहाँ परम शान्ति और सुरक्षा का अनन्त साहचर्य हो। श्रुतियों की परम पुनीत वाणी से अभिप्रेरित हुआ मैंने संसार का परित्याग किया और पाया कि संसार की समग्रता मुझमें सिमट आई है।

कठोर आत्मसंयम और तपस्या की कसौटी से उतर कर मैंने अपने में इतनी प्रभूत सामर्थ्य पाई कि संसार के मायावी बाजार में अनासक्त विचरने लगा। अपनी दिव्य दृष्टि का यह प्रसाद मैं विशाल जनवर्ग में वितरित कर सकूँ, यह भावना मेरे मन पें घर कर गई। मैंने एक संस्था का निर्माण किया और उसका नाम दिया— डिवाइन लाइफ सोसाइटी।

मेरा काम उतना सुगम नहीं था कारण कि संसार के रङ्गमञ्च पर बीसवीं शताब्दी का भौतिक ताण्डव अपना कमाल दिखा रहा था। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध की याद अभी भूली नहीं थी और तृतीय महायुद्ध की आगामी विभीषिका को सम्भाव्य मानकर लोग संत्रस्त नजर आते थे। ये सब दु:ख-शोकादि मनुष्य के अपने बनाए हुए थे, यह तो कहना ही पड़ता है। इन विपदाओं से उबार कर मानव को अपनी गल्तियों का एहसास कराना और उन्हें उचित पथ पर लाना तत्कालीन समाज

की प्रमुख समस्या थी। मेरी डिवाइन लाइफ सोसाइटी इस विषम समस्या के समाधान के रूप में अवतरित हुई और उसने मानव को अधोगति से बचाकर जीवन की व्यापकता का अर्थ समझाया। प्रत्येक अन्तःकरण में दिव्य चेतना के स्फुरण द्वारा उसे धर्मानुमोदित जीवन बिताने के लिए प्रेरित करना मेरी सोसाइटी का उद्देश्य रहा।

अनावश्यक वादविवादों से धर्म का मर्म समझा या समझाया नहीं जा सकता। लगातार उपदेश छाँटते रहने से भी धर्म की प्रस्थापना नहीं की जा सकती। हमें अपनी परिस्थितियों के साथ कदम से कदम मिला कर चलना सीखना होगा। ईश्वर की सृष्टि के रहस्य को बड़े गम्भीर रूप से समझना होगा। पाखण्ड या वादविवाद से नहीं प्रत्युत धर्मानुमोदित जीवन को बिताते हुए धर्म का रहस्य समझ में आता है। मैं तो समझता हूँ कि व्यक्ति का धर्म चाहे जो भी हो, उसके आराध्य महापुरुष चाहे जो भी हों, उसकी भाषा या देश चाहे जो भी हो, वह पुरुष हो या स्त्री, वह वयस्क हो या अवयस्क—वह यदि आत्मसंयम-रूपी तपस्या के पुनीत अर्थ को समझता है और जीवन के किसी भी क्षेत्र तथा किसी भी परिस्थिति में रहता हुआ उसे अपने आचरण में परिणत कर लेता है तो वह निःसन्देह रूप से धार्मिक है।

मैं तो मानता हूँ कि धर्म तो वही है जिसे हमारा हृदय स्वीकार कर ले। विशुद्ध हृदय में

सत्य प्रेमादि का वास होता है। ये ही धर्म के स्वरूप हैं। इनके अतिरिक्त मानव में छिपा हुआ जो पशुत्व है, उसका हनन; मन का प्रशमन, सद्गुणों का विकास, निष्काम सेवा, सद्भावना, मैत्री भाव आदि मिल कर वास्तविक धर्म का स्वरूप निर्धारण करते हैं। मेरी डिवाइन लाइफ सोसाइटी में इन विचारों का समधिक आदर है। उपदेश की अपेक्षा उदाहरण द्वारा मैं इन तथ्यों को अपने शिष्यों के समक्ष स्पष्ट भी करता हूँ।

आज के व्यस्त जीवन में न किसी चिन्तक के पास इतना समय है, न इतना धैर्य है कि वह कठोर तपस्या और कर्मकाण्ड में पड़ने जाय। इस कारण इनमें से बहुतों पर से तो जनता का विश्वास उठ गया है। अतः आज की जनता को तपस्या का वास्तविक अर्थ समझाने के लिये, इसके पूर्वापर विभाग और इसके लक्ष्य को स्पष्ट करने के लिये मैंने दिव्य जीवन का प्रचार किया जो धर्मानुमोदित जीवन का नाम है तथा एकान्तसेवी से लेकर व्यस्त जनवर्ग, हर कोई इसका अभ्यास कर सकता है— विवेकी से लेकर अल्पज्ञ सबके प्रति यह अनुकूल हो सकता है। यह दिव्य जीवन की पद्धति मानव के नित्य के कर्त्तव्यों की ही सूची है, कुछ और नहीं। यह पद्धति सर्व साधारण के लिये मान्य है, ग्राह्य है और सुगम है। कोई व्यक्ति गिरिजाघर में उपासना करता हो, मन्दिर में पूजा करता हो या मस्जिद में नमाज अदा करता हो, दिव्य जीवन सबके लिये बोधगम्य है।

प्रत्येक सत्यार्थी जिज्ञासु मन की कलाबाजियों को परख नहीं पाता है और मन में उलझ कर रह जाता है। अध्यात्म पथ का पथिक अपने लक्ष्य तक पहुँचने से पूर्व सहस्र कामनाओं और वासनाओं की भूलभुलैया में पड़ता और निकलता है, सबसे निकल कर अन्त तक सकुशल पहुँच जाना काफी मुश्किल है। लेकिन सबसे पार पाकर अन्त तक पहुँच सके तो इसमें सन्देह नहीं कि वह पद सच्चिदानन्दमय और जाज्वल्यमान है। मैंने अपनी सभी पुस्तकों में इन्द्रियों को अनुशासन में रखने, मन को विजित करने और चित्तशुद्धि पूर्वक मानसिक शान्ति और आह्लाद प्राप्त करने की बात दुहराई है।

मैंने अपने जीवन में सीखा कि मनुष्य को उदारतापूर्वक निःस्वार्थभाव से दान देना चाहिये। कुछ देकर देने वाला नुकसान में नहीं रहता है; क्योंकि जितना दिया गया उससे हजारों गुना अधिक उसे प्राप्त होता है। कुछ दे देना मात्र दान नहीं है, इसके साथ निष्काम भावना और सहानुभूति भी चाहिये। दान वास्तव में आत्मसमर्पण है, यह ज्ञान-यज्ञ है।

मेरे विचार से मनुष्य स्वयं में अच्छा हो और दूसरों के लिये अच्छा करे, यह जीवन की बहुत बड़ी सीख है। सभी परिस्थितियों में सबके साथ समुचित रूप से अपना निर्वाह ही मनुष्य की अच्छाई का उत्तम आदर्श है। इसी को अन्य रीति

से ईश्वरीय जीवन कहते हैं; परन्तु सच्चे हृदय से अच्छाई के आदर्श पर चलना उतना सुगम नहीं जितना यह कहने-सुनने में सुगम है। मनुष्य अपने अन्तरतम से सत्यपरायण हो, यह कोई मामूली बात नहीं। यह उपलब्धि सभी पार्थिव वस्तुओं की प्राप्ति से बढ़कर है।

मेरे लिए कोई भौतिक संसार नहीं है। जो कुछ भी मेरे सामने है, वह परमेश्वर की महिमा का प्रसार है। मैं असंख्य जनसमुदाय में उस परमात्मा का दर्शन करता हूँ जिसके सहस्र शिर और सहस्र बाहु आदि से युक्त होने की बात सुनी जाती है। इसी भावना से मैं जनता की सेवा करता हूँ। मुझे आभारी तो होना ही पड़ता है, कारण कि जो श्वास मैं ले रहा हूँ वह परमात्मा का ही श्वसित है और जो आनन्द मुझे प्राप्त है, वह परमात्मा से ही जन्य है। इससे बढ़कर कुछ और सीखने या सिखाने की बात क्या हो सकती है, यह सभी धर्म और दर्शन का निष्कर्ष है।

जिस दर्शन में मैं विश्वास करता हूँ वह न तो स्वप्नवाद है, न निरन्तर आत्माभिमुख वृत्ति का पर्याय है और न ही सर्वथा संसार का निषेध ही करने वाला है। मेरा दर्शन भौतिक जगत् को सत्य मानकर इन्द्रियलोलुपवादी मानववाद को भी महत्व नहीं देता। मैं संसार को परम पुरुष की अभिव्यक्ति मानता हूँ, यह संसार उस पुरुष विशेष से अभिन्न रूप में अवस्थित है—मैं जीवात्मा को

अविनश्वर मानता हूँ। एक ही ब्रह्म इस जगत् में अनेक नामरूपों में प्रकट है। साधक के लिए उचित है कि वह निम्न वर्ग में श्रद्धा रखते हुए ही ऊपर को उठे। आरोग्य, सद्बुद्धि, गम्भीर ज्ञान, दृढ़ संकल्पशक्ति, नैतिक सामर्थ्य—ये सब आदर्श मानवता के द्वार को उन्मुक्त करते हैं। परिस्थितियों के अनुसार अपने को बना लेना, सबके शुभ पक्ष को देखना, प्रकृति की शक्तियों की सहायता से अपने आत्मसाक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करना, ये सब जीवन के चारु दर्शन का निर्माण करते हैं। दर्शन के प्रति मेरा केवल बाहरी अनुराग ही नहीं है प्रत्युत इसे मैं अपनी निधि के रूप में मानता हूँ। मैंने अपनी सभी कृतियों में चेतना के भौतिक और आध्यात्मिक पक्ष को स्पष्टतया समझाया है और इनके द्वारा पूर्णत्व के पथ पर सहज चरण देने का आदेश दिया है। जो सर्वथा पूर्ण हैं, वे सर्वभूतहिते रता: के सिद्धान्त को मानने वाले हैं।

सभी अवस्थाओं में सर्वत्र आत्मा का दर्शन करना तथा इन्द्रियों के हर कार्य को आत्मानुभूति ही समझना मेरा धर्म है। ब्रह्म में निवास करते हुए उसमें विलीन हो जाना मेरा धर्म है। इस प्रकार जीवन यापन करते हुए अपनी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को परहितार्थ समर्पण करना मेरा धर्म है। ईश्वर का नाम लेना और अपने योग्य शिष्यों को ईश्वर की मर्यादा से अवगत कराना मेरा धर्म है। जिस ज्ञान ने मुझे कृतकृत्य किया

उसे संसार में निःस्वार्थरूपेण वितरण करना तथा संसार का हितैषी और परम मित्र बनना मेरा धर्म है। दलितों, पतितों, रोगियों, अपाहिजों की सेवा करना मेरा धर्म है, इन्हें सहानुभूति और करुणा प्रदान करना मेरा धर्म है। सब में समान दृष्टि रखना, राजा-रङ्क को एक सन्तुलन में परखना, निर्धन और धनी को समभावेन समझना मेरा धर्म है।

इस मार्ग पर कदम उठाना यद्यपि दुष्कर जान पड़ता है लेकिन जब एक बार रास्ते पर आ गए फिर तो आप चल पड़ेंगे। आप में धैर्य और अध्यवसाय की यथेष्ट जरूरत है। बहुत से लोग साधना से जी चुराते हैं और अपनी प्रगति के प्रति उदासीन रहते हैं। इससे पता चलता है कि उन्हें लक्ष्य के प्रति मोह नहीं है। संसार में अपनी स्थिति को यथार्थ रूप से समझने के लिए उत्तम शिक्षा-दीक्षा की आवश्यकता है। आधुनिक शिक्षा-पद्धति से केवल पल्लवग्राही पाण्डित्य प्राप्त होता है। शिक्षा के क्षेत्र में गम्भीरता लाने के लिये जनसहयोग तो सापेक्ष है ही, सरकार को भी इसके प्रति सजग होना है। इसके बिना सुधार सम्भव नहीं। बौद्धिक और भावना-पक्ष में सुचारु सामञ्जस्य चाहिए। कल्पना और यथार्थ को एक स्तर पर लाना होगा। इसके लिए प्रयत्न करना कर्मयोग कहलाता है। भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में इसका विधान किया है। मैं चाहता हूँ कि ये उपदेश जनमानस पर

इस तरह उतर जाएँ कि यह जगत् स्वर्ग का रूप धारण कर ले। यह कोई दिवास्वप्न नहीं है; बल्कि यथार्थ है जिसे जीवन में रूपान्तरित किया जा सकता है—आवश्यकता है केवल जीवन के तात्पर्य को यथातथ्य समझ पाने की।

—स्वामी शिवानन्द

## शान्ति के पथ पर

शान्ति समाहित चित्त की अवस्था का नाम है।
शान्ति परिपूर्ण ब्रह्म है।
'अयं आत्मा शान्तः'—
यह आत्मा निरन्तर शान्त है।
जिसमें जनरव नहीं, कोलाहल नहीं—
वह शान्ति है।
यह शान्ति ही तुम्हारा अन्तर्वासी आत्मा है।
शान्ति ही तुम्हारा वास्तविक नाम है।
शान्ति से विपुल विचार-शक्ति मिलती है।
शान्ति से आत्मा अनुभूतिगम्य होता है।
शान्ति के साम्राज्य में प्रविष्ट हो कर
आत्मा परमात्मा बन जाता है।
अतः इसमें प्रवेश ले कर
अपने स्वरूप को परमात्म-स्वरूप में
परिणत कर लो।

—श्री स्वामी शिवानन्द
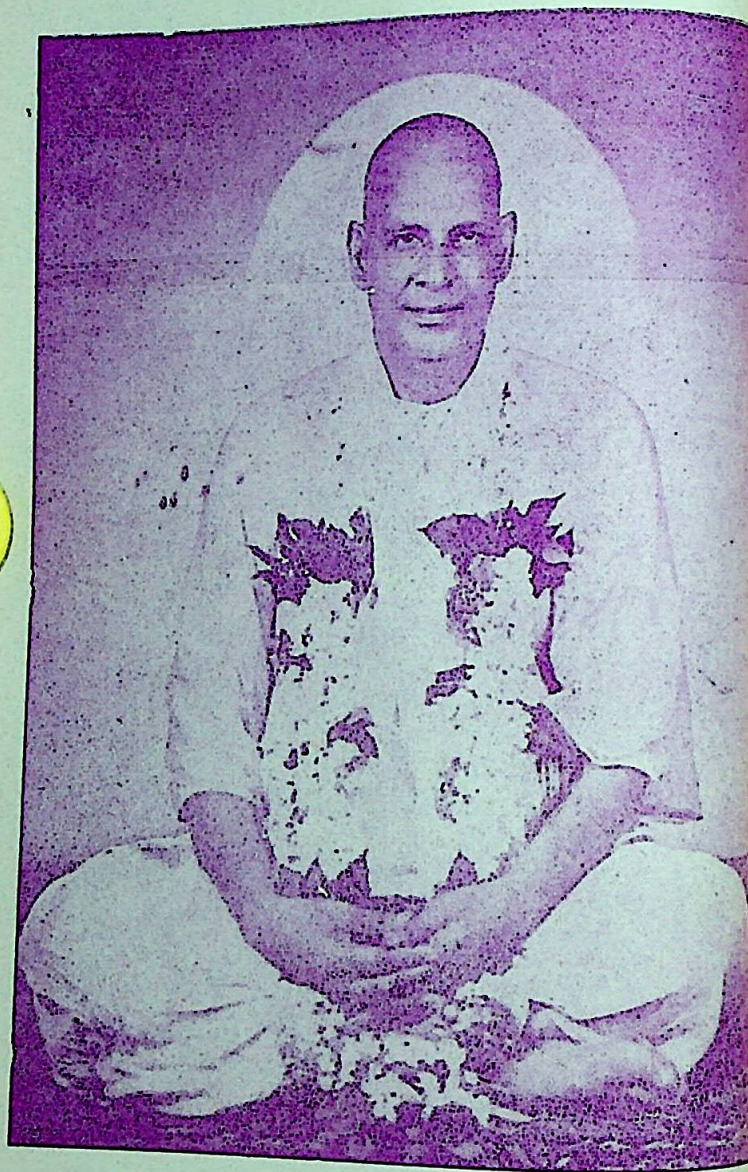
H.H. SRI SWAMI SIVANANDA

# दिव्योपदेश

# दिव्योपदेश

## ( प्रथम अध्याय )

१. 'मैं शरीर हूँ'—यह सोचना अविद्या है। 'मैं परम शुद्ध चैतन्य हूँ'—यह सोचना विद्या है।

२. जीवनोपयोगी दर्शन ही धर्म कहलाता है।

३. यह दुर्भाग्य की बात है कि हम आत्मिक स्वतन्त्रता के मूल्य चुका कर सांसारिक सुखों को खरीदते हैं।

४. आध्यात्मिक अभ्युत्थान के लिए दो ही सहायक तत्त्व हैं—सेवा और त्यागभाव।

५. आत्मा को शब्दों की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। यह तो अनुभूतियों द्वारा गम्य है।

६. अपनी इच्छा पूरी करके कोई मनुष्य पूर्ण नहीं बन सकता—अपूर्णता और असन्तोष उसे सताते ही रहेंगे। इच्छा के विमोचन में ही सुख है।

७. अपने हृदय-क्षेत्र में भक्तिभाव के बीज बोइये—इसे लगन से सींचिए। इसके चारों ओर सत्सङ्ग का बाड़ लगा दीजिए, जिससे कामादि विकारों के रूप में पशुओं का प्रवेश न हो सके। यदि आप ऐसा करेंगे तो कालान्तर में शान्ति और आमोद की फसल आपके हाथ लगेगी।

८. क्या आप ईश्वर से तादात्म्य चाहते हैं ? फिर तो आपको तृण की भाँति नम्र, शिशु की भाँति निर्दोष और गोपियों की भाँति अनुरक्त बनना पड़ेगा।

९. यदि आप ब्रह्मसाक्षात्कार करते हैं तो यह आपकी बौद्धिक विजय ही नहीं, आध्यात्मिक विजय भी मानी जाएगी।

१०. श्रद्धा के माध्यम से माया का वह आवरण हटा दीजिए जो ईश्वर पर छाया हुआ है। अब आप उनसे सम्पर्क स्थापित कीजिए और उनमें समा जाइए। यही आपका गन्तव्य रहे !

११. श्रद्धा के बिना की गई प्रार्थना 'अरण्य रोदन' है।

१२. सहृदयता से आप महान् बनते हैं जबकि दानवता का दामन पकड़ कर आप पशुओं की कोटि में पहुँचते हैं।

१३. जब नाम और रूपों का नाटक खतम होता है तब ब्रह्मविद्या का अवतरण होता है।

१४. 'अपने स्वरूप को पहचानें'—यही आपकी बुद्धिमत्ता है।

१५. जब आपमें दिव्य गुणों की श्रीवृद्धि होगी तो मन वैषयिक सुखों से अपने आप सिमट आएगा।

१६. ईश्वर में सभी प्राणियों का समावेश है और सभी प्राणियों में ईश्वर का समावेश है।

१७. सूर्योदय के प्रकाश से जैसे फूलों की पङ्खड़ियाँ उघड़ जाती हैं, वैसे ही आप ईश्वर के प्रकाश के समक्ष अपने हृदय की पङ्खड़ियों को उघड़ जाने दीजिए।

१८. ज्ञानाग्नि में शुद्ध होकर साधक परमात्मपद को प्राप्त करता है।

१९. वासना की अग्नि आपके अन्तःकरण को विदग्ध करती है।

२०. आप अपनी हर अनुभूति के साथ कुछ न कुछ विकास तो करते ही हैं।

२१. आपकी बाहरी परिस्थितियाँ भी आपके आन्तरिक अभ्युत्थान में सहायक होती हैं।

२२. आध्यात्मिक अभ्युत्थान के सोपान हैं क्रमशः कर्म, उपासना, ध्यान और साक्षात्कार।

२३. अनन्त जीवनचक्र में 'मृत्यु' तो एक मामूली सी घटना है।

२४. सभी अच्छे विचार कालान्तर में अच्छे कर्मों को जन्म देते हैं।

२५. ईश्वर ही परम सुख का मूल है।

२६. धर्म ही श्रेष्ठ जीवन की कुञ्जी है।

२७. परमात्मा से तादात्म्य ही मानव प्रयत्नों की मञ्जिल होनी चाहिए।

२८. शुभ कर्म की परिभाषा यही है कि हम इससे ईश्वर के प्रति उन्मुख हों।

२९. सत्य का साक्षात्कार ही ज्ञान है।

३०. राग, द्वेष और भय अविद्या के प्रसूत हैं।

३१. धर्म का उद्भव भय से होता है। लेकिन भक्ति और उपासना के बाद ईश्वर-साक्षात्कार में इसकी परिसमाप्ति होती है।

३२. त्याग-भाव को अपना कर आप ईश्वर के साम्राज्य में प्रवेश कर सकते हैं।

३३. जब बाह्य सुखों का परित्याग किया जाय तो आन्तरिक सुख प्रकट होता है।

३४. त्याग का अभिमान धन के अभिमान से भी ज्यादा खतरनाक है।

३५. धर्म उस परम पुरुष के साक्षात्कार में निमित्त है, जिसे ईश्वर कहते हैं।

३६. पञ्चभूतों का अतिक्रमण कर आप अमर आत्मा में निवास कीजिए।

३७. विवेकी पुरुषों के अनुभव से संसार 'नश्वर' है किन्तु सन्तों की दृष्टि में यह 'ईश्वर का ही रूप' है।

३८. मन, वचन और कर्म में साम्य लाने की कोशिश कीजिए। मन में कुछ सोचना, वचन से कुछ अन्य बात ही बोल देना और कर्म से कोई तीसरा कर्म कर गुजरना अच्छा नहीं।

३९. सांसारिक विचारों के कुहरे से ईश्वर का स्वरूप ढका रहता है।

४०. जबकि विवेक का सूर्योदय होता है तब कुहरा मिट जाता है, फिर ईश्वर का स्वरूप प्रत्यक्ष होता है।

४१. किसी साधारण स्रोत से असाधारण घटना का सञ्चार हो जाता है।

४२. हर सूर्योदय के साथ जीवन को नए सिरे से प्रारम्भ कीजिए।

४३. जहाँ प्रेम है, वहाँ शान्ति है और सौमनस्य है।

४४. कामना का दूसरा नाम है दरिद्रता, अपूर्णता—यही नहीं, मृत्यु भी।

४५. ईश्वर के प्रति एकाङ्गी प्रेम में अत्यधिक भावनाओं का पुट दीजिए।

४६. ज्ञान और अज्ञान क्रमशः पुण्य और पाप से अभिहित हैं।

४७. स्वार्थ और निःस्वार्थ क्रमशः पाप और पुण्य के पर्याय हैं।

४८. परिवर्तनशील संसार जिस परिवर्तन-विहीन तत्त्व से परिचालित है, उसे परमात्मा कहते हैं।

४९. अपने विवेकबल से व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना में समाहित कीजिए।

५०. पूर्णत्व की दिशा में प्रशस्त पथ का नाम है—धर्म। ★

## दिव्योपदेश

### ( द्वितीय अध्याय )

१. ईश्वर अपने भक्त के प्रारब्ध को अपने ऊपर ले लेता है।

२. अपनी भलाई के लिए किया गया काम 'बन्धन' है जबकि बहुजनहिताय किया गया काम सब बन्धनों से 'मुक्ति' के लिए है।

३. कई काम जो हम जानबूझ कर करते हैं, अनजाने में आदतों का जनक होता है।

४. छोटा-से-छोटा भी कोई काम चरित्र पर अपना प्रभाव छोड़ता है।

५. हम जितना ही अपने पास ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करें, उतना ही हम अपने को निर्भय अनुभव करेंगे।

६. आपका हृदय सुपावन मन्दिर है। इसमें भगवान् की प्रतिष्ठा कीजिए।

७. शान्ति और सुख केवल सत्सङ्ग के परिणाम हैं।

८. जब ईश्वर के प्रति अनुराग बढ़ता है तब भक्त कुछ और नहीं चाहता ; वह सिर्फ ईश्वर का सान्निध्य चाहता है।

९. ईश्वर जब आप पर कृपावान् बनता है तो अपने को आपके गुरु के रूप में प्रकट कर देता है।

१०. ईश्वर की प्रार्थना शुरू में स्वार्थभाव से की जाती है, लेकिन बाद में वह निःस्वार्थ बन जाती है और साधक के मन को पवित्र करती है।

११. प्रेम का पुरस्कार अथवा प्रतिशोध वह अपने में स्वयं है।

१२. आत्मा या परमात्मा दोनों में कोई भेद नहीं है।

१३. अतीत में किये गये पुण्य कर्म विवेक और वैराग्य के जनक होते हैं।

१४. वासनाओं के क्षय से आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

१५. जो 'एक' है वह सत्य है, जो 'अनेक' है वह असत्य है और बदलने वाला है।

१६. संसार के रंगमंच पर ईश्वर अभिनेता भी है और दर्शक भी।

१७. आत्मा एक और अक्षय है, फिर भी उसने अनेक नामरूप धारण किए हैं।

१८. ईश्वर की अभिव्यक्ति ही संसार है, वह एक से अनेक रूपों में प्रकट होता है।

१९. व्यष्टि और समष्टि में अनुस्यूत सत्ता एक ही है।

२०. आत्मा या परमात्मा साक्षी है तथा यही मन का स्वामी है।

२१. मन अनुभव करता, सोचता और वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है।

२२. आत्मानुशासन का बीज बोइए, उसे प्रेम के जल से सींचिये, इसके चारों ओर ईश्वर के नाम का बाड़ लगा दीजिये। जो वृक्ष पनपेगा, वह अमर फल को प्रदान करेगा।

२३. साधना का उद्देश्य होना चाहिये अविद्या का ध्वंस।

२४. वेदान्त कोई दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है, यह आत्मसाक्षात्कार का क्रियात्मक रूप है।

२५. प्रेम वह सरिता है जिसमें अवगाहन कर परम शान्ति मिलती है।

२६. मनुष्य में तीनों चीजें वास करती हैं—मनुष्यता, पशुता और दिव्यता।

२७. संसार-सागर में डूबते हुए के लिये प्रार्थना ही तिनके का सहारा है।

२८. आप कभी-कभी कुछ सुनने या देखने में असमर्थ रहते हैं, कारण कि आपका मन वहाँ नहीं था। इससे स्पष्ट हो ज:ता है कि इन्द्रियों का कार्य-कलाप मन के संयोग से ही होता है।

२९. ईश्वर अनुभूतिगम्य है जबकि ब्रह्म सकल अनुभूतियों से परे है।

३०. ईश्वर सगुण है जबकि ब्रह्म निराकार और निर्गुण है।

३१. ईश्वर प्रेमस्वरूप है जबकि ब्रह्म ज्ञान-स्वरूप।

३२. अपने हृदय को विशुद्ध करके उस एकान्त प्रकोष्ठ में ईश्वर का आवाहन कीजिये।

३३. मोमबत्ती अपने आपको जला कर प्रकाश फैलाती है। आप भी निष्काम सेवा द्वारा अपने कुसंस्कारों को जलाकर ज्ञान-रूपी प्रकाश को फैलाइये।

३४. प्रातःकाल भगवान् का नाम लेते हुए बिस्तर से उठिये, दिन भर उनका नाम लेते हुए काम कीजिये और रात को उनका नाम ले कर ही विश्राम कीजिये।

३५. अपने जीवन को ईश्वरमय बन जाने दीजिये।

३६. इस अनन्त सृष्टि में समय का क्या मूल्य है?

३७. आत्मनिष्ठ जीवन अनन्त और अपरि-सीम है।

३८. अपनी आँखें उठा कर ईश्वर की महिमा और गरिमा को देखिये।

३९. जो ईश्वर को प्राप्त कर लेता है उसे भूख-प्यास नहीं सताती।

४०. जीवन की सभी बुराइयों की औषधि है—प्रेम।

४१. सभी प्रकार के द्वन्द्वों से रहित जो अद्वैतावस्था है, उसे 'तुरीय' कहते हैं।

४२. अद्वैतस्वरूप का ज्ञान ही आध्यात्मिक अभ्युत्थान का चरम लक्ष्य है।

४३. आध्यात्मिक परिपूर्णावस्था में पहुँच कर अद्वैत तत्त्व की पहचान कीजिये।

४४. एक अन्धा व्यक्ति किसी वस्तु को देख भले न सके, लेकिन अनुभव से उसे जान लेता है। किन्तु जो आत्मज्ञान से रहित यानी अन्धे हैं वे तो किसी वस्तु को देख कर भी उसकी पारमार्थिक सत्ता को नहीं पहचान पाते।

४५- मन स्वयंप्रकाश वस्तु नहीं है। यह परम चैतन्य से अपने लिये प्रकाश माँगता है।

४६. तमोगुण को रजोगुण से जीतिये। निष्काम सेवा द्वारा रजोगुण को सत्त्व में परिणत कीजिये। आत्मज्ञान से सत्त्व का भी अतिक्रमण कर जाइये।

४७. जबकि साधक में सत्त्वगुण की अभिवृद्धि होती है, उसमें दिव्यता कूट-कूट कर भरने लगती है।

४८. जबकि मन शान्त रहता है, उसमें सत्य तत्त्व का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है।

४९. मन एक बार में एक ही विषय का चिन्तन कर सकता है।

५०. मन को माया भी कहते हैं। यह प्रकृति का विकार है।

५१. निकृष्ट मन आपका शत्रु है जबकि उत्कृष्ट मन आपका मित्र।

—:o:—

## दिव्योपदेश

### ( तृतीय अध्याय )

१. पीड़ा और संघर्ष के बिना तत्त्वज्ञान नहीं मिल सकता है।

२. मनुष्य में एक अविनश्वर तत्त्व विद्यमान है। वह मन, बुद्धि, शरीर या प्राण में से एक भी नहीं है। इसे जानने वाला अमर हो जाता है।

३. बुद्धि कारण शरीर का प्रतीक है।

४. उस अपरिसीम आनन्द का द्वार उन्मुक्त करने वाली कुञ्जी का नाम समाधि है।

५. निर्धनता, पवित्रता और विनम्रता को अपना कर आप अमर पद को प्राप्त कर सकते हैं।

६. अग्नि के सम्पर्क से जैसे लोहा गर्म और लाल हो उठता है, वैसे ही प्रकाश-पुञ्ज आत्मा के संपर्क से बुद्धि भी प्रकाशमान् हो उठती है।

७. बाल की खाल निकालने वाली तर्कविधि से आप आध्यात्मिक विकास कदापि नहीं कर सकते।

८. प्रेम थोड़ा ही करें, लेकिन हमेशा करें।

९. आत्म-साक्षात्कार की कुञ्जी है सत्संग, द्वार है गुरुवाक्य, मार्ग है शास्त्रोपदेश तथा निवास है उसका हृदयमञ्च।

१०. अन्तःकरण की शुद्धता से पूर्णत्वपद की भूमिका शुद्ध होती है तथा आत्म-साक्षात्कार में उसका पर्यवसान हो जाता है।

११. बार-बार अपने से प्रश्न कीजिये—यह जीवन क्या है? हम कहाँ से आये? हमारा अन्त कहाँ है?

१२. अमर जीवन का प्रवेश-द्वार है मृत्यु।

१३. अन्तःकरण की शुद्धता परमानन्दपद की जननी है।

१४. अपने आत्मा को, तथाविध संसार को, ब्रह्म का स्वरूप ही समझना चाहिये।

१५. संसार को संसार के रूप में देखें तो यह सापेक्ष सत्य है जबकि संसार को परमार्थ के रूप में देखें तो यह सनातन कहलायेगा।

१६. यदि आपकी दृष्टि ज्ञान से सहकृत रहे तो आप सारे संसार को ईश्वर का ही रूप समझें।

१७. अपनी जीवन-नैया को इस तरह खेइए कि उसकी दिशादर्शक सूई हमेशा ईश्वर की तरफ हो।

१८. जब आप प्रार्थना करते हैं तो हृदय को मन से और मन को वाणी से मिलाइये।

१९. अपने जीवन-पथ में ईश्वर को पथप्रदर्शक बनाइये।

२०. जबकि अन्तःकरण से सभी इच्छाओं का विलय हो जाता है तो साधक अमरत्वपद को प्राप्त करता है।

२१. एक चरित्रहीन व्यक्ति वास्तव में मृत है, भले ही वह जी रहा हो।

२२. जो ईश्वरीय शक्ति है वह अदृश्य और व्यापक है, अमर और मौलिक है, अगम्य और त्रिगुणातीत है।

२३. प्रार्थना के बिना अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती, इस शुद्धि के बिना ध्यान नहीं हो सकता, ध्यान के बिना तत्त्व का साक्षात्कार सम्भव नहीं और साक्षात्कार के बिना मुक्ति नहीं प्राप्त होती।

२४. आपके जीवन का कर्तव्य होना चाहिये भगवान् की सेवा करना, उद्देश्य होना चाहिये उन्हें प्रेम करना, लक्ष्य होना चाहिये उनमें समाहित हो जाना।

२५. ब्रह्म या परमेश्वर हमारी इन्द्रियों के सम्मुख विभिन्न नामरूपों में प्रकट होता है।

२६. ज्ञानवान् मनुष्य की दृष्टि में संसार की सारी अनेकता सिमट कर एक परमात्मस्वरूप हो जाती है।

२७. भगवान् का हर पावन मन्त्र आत्मिक शक्ति से परिपूरित होता है।

२८. जो ईश्वर को जानता है, वही वस्तुतः संसार को भी जानता है।

२९. जो व्यष्टि चैतन्य है, वही आप हैं। इसे जान-समझ कर मुक्तिपद प्राप्त कीजिये।

३०. जो ईश्वर को जानने की सच्चे दिल से कोशिश करता है, उसके प्रति ईश्वर अपने स्वरूप को प्रकट भी कर देता है।

३१. अज्ञान का पर्दा फाड़कर ज्ञान का दरवाजा खोलिये, फिर ब्रह्मानन्द में प्रवेश कीजिये और शान्तिपद को प्राप्त कीजिये।

३२. संसार की आने-जाने वाली पदमर्यादाओं के लिये आप क्यों तरसते हैं? आत्मज्ञान को प्राप्त कर के संसार के एकछत्र अधिनायक बनिये।

३३. नैतिक पूर्णता के बाद ही आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

३४. जो सतत अन्तर्दृष्टिशील है, वह बाहरी वस्तुओं को यथार्थ रूप में जानने वाला है।

३५. ईश्वर ने संसार की रचना क्यों की? क्योंकि यह उसका स्वभाव है।

३६. यह संसार आनन्दस्वरूप परमात्मा की प्रतिकृति है।

३७. प्रेम में आनन्द है, शक्ति है, ईश्वर है। इसमें अमृत है।

३८. बुद्धि में प्रकाश का, मन में ग्राहिका शक्ति

का और शरीर में जीवन-संचार का कारण है आत्मा।

३९. सकल सृष्टि निरन्तर दिव्य परमात्म-स्वरूप की ओर बढ़ रही है।

४०. यह संसार ईश्वर का दिव्य प्रतिष्ठान है।

४१. सकल संसार और उसके प्राणिवर्ग ब्रह्म-रूपी सूत्र में पिरोए हुये हैं।

४२. विचार या अनुसंधान उस बीज की भाँति है जिससे दिव्यानन्दरूपी वृक्ष के फूटने और पनपने की आशा बँधती है।

४३. सभी दुःखों के ध्वंस का उपाय है सत्पुरुषों की संगति।

४४. अन्तःकरण की शुद्धि से पूर्णत्व पद, ध्यान से आनन्द, आत्मानुसंधान से ज्ञान और भक्ति से दिव्योन्माद सुलभ होता है।

४५. पूर्णता एक ही है, दो नहीं। यदि दो पूर्णतायें हों तो एक दूसरे को अवच्छिन्न करेंगी।

४६. ईश्वर स्वयं पूर्ण है, इसलिये वह एक है।

४७. ईश्वर की पूजा शान्ति, पवित्रता, दया और अहंता के फूलों से की जाती है।

४८. ईश्वर अपनी सृष्टि को उत्पन्न करता है, उसमें प्रवेश कर उसे संभालता है तथा अन्त में उसे अपने में निहित कर लेता है।

४९. जो अपने आत्मा की अमर वाणी को

सुनता है, वह अपने जीवन में भली प्रकार से जीता है।

५०. सांसारिक पदार्थों से अपना संग छोड़कर ईश्वर में अनुराग बढ़ाइये।

५१. उस परमैश्वर्य के लिये प्रयत्न कीजिये जिसका क्षय नहीं।

—:०:—

## दिव्योपदेश

### (चतुर्थ अध्याय)

१. अनधिकारी के प्रति परमार्थ सत्य की घोषणा नहीं की जाती है।

२. दीक्षा से आध्यात्मिक जीवन का श्रीगणेश होता है।

३. प्रार्थना वह चट्टान है जिसके सहारे डूबता हुआ मनुष्य संसार-सागर से त्राण पाता है।

४. प्रेम में बाहरी हाव-भाव गौण होते हैं, हृदय प्रधान होता है।

५. ईश्वर के नामोच्चारण से उनके प्रति अनुराग होता है। अनुराग से भक्ति आती है। भक्ति का रूपान्तर भाव में होता है और भाव की इतिश्री समाधि में होती है।

६. श्रद्धा और तर्क का अविनाभाव सम्बन्ध होना चाहिए।

७. 'प्रेम' वह शासक है जो खड्ग का भय दिखाकर किसी को वश में नहीं करता। 'प्रेम' वह सूत्र है जो दीखता नहीं पर बांधता है जकड़कर।

८. साधना का तात्पर्य ईश्वर को जानना मात्र नहीं है किन्तु स्वयं को ईश्वर बना लेना है।

९. ध्यान का चरम लक्ष्य है आत्मसाक्षात्कार।

१०. यह संसार परब्रह्म परमात्मा का बाह्य रूप है।

११. ईश्वर को आपने संसार में नहीं पाया तो फिर हिमालय की कंदराओं में भी नहीं पा सकते।

१२. अपनी बहिर्मुख प्रवृत्तियों को रोकिए और सब को अन्तर्मुख कीजिए।

१३. जो बात आपके दिल में खटकती है, वही तो अधर्म है।

१४. जो आपको सन्मार्ग से घसीट कर नीचे ले आए, वही तो अधर्म है।

१५. परमात्मपद को प्राप्त करने के लिए आपको सभी पार्थिव वस्तुओं का परित्याग करना पड़ेगा।

१६. सन्तोष से बढ़कर निधि नहीं, सत्य से

बढ़कर पुण्य नहीं, आत्मानन्द से बढ़कर आनन्द नहीं, आत्मा से बढ़कर अपना कोई मित्र नहीं।

१७. दृश्य और अदृश्य जगत् का संयोजक है–मानव।

१८. जो ईश्वर का सांक्षात्कार कर चुका हो उसे भागवत कहते हैं।

१९. प्रकृति को सजाने में ईश्वर ने अपनी कला का परिचय दिया है।

२०. वैज्ञानिक जन अपने आविष्कारों से संसार को जोड़ते हैं जबकि राजनीतिज्ञजन अपने कलुषित विचारों से इसे खण्ड-खण्ड करते हैं।

२१. पार्थिव सुखों से धीरे-धीरे मन को हटाइए और आत्मिक सुखों में रति कीजिए।

२२. साधु की दृष्टि में आध्यात्मिक अग्नि होती है। यह आपके पापों को भस्मीभूत कर देती है।

२३. दंभ से मनुष्य अन्धा हो जाता है।

२४. दूसरों से व्यवहार करते हुए धैर्य का उपयोग कीजिए, किन्तु अपनी उन्नति में अधीरता बरतिए।

२५. आपके क्रमिक विकास में ईश्वर भी अपने अनेक रूपों में आपके समक्ष प्रस्तुत होता है।

२६. इन्द्रियों के वाद्यसंकेत पर मन का भूत सांसारिक

करता है।

२७. एक संत सबसे बड़ा योद्धा है क्योंकि उसने कर्म के अटूट बन्धनों को तोड़ डाला है।

२८. सांसारिक बन्धनों की आधारभूमि है मन।

२९. आत्मसाक्षात्कार में अहंकार का विनाश सबसे पहली शर्त है।

३०. हिमालय में भाग कर नहीं बल्कि अहंकार का नाश करके संन्यास का लक्ष्य पूरा होता है।

३१. अपने को अन्तर्मुख कीजिए। आपको अपरिसीम शक्ति के दर्शन होंगे।

३२. आपमें निहित जो ईश्वर है, वही परमार्थ सत्य है।

३३. भावशुद्धि, भक्ति और निर्भीकता जैसे विचारों से अपने मन को समृद्ध कीजिए।

३४. आपमें ईश्वर की अनन्त शक्ति विद्यमान है।

३५. ईश्वर के चरणों में अपनी दृष्टि जमाकर मानवता की सेवा में अपने हाथ फैलाइए।

३६. जीवन को नीरस और डरपोक बनाना आपको शोभा नहीं देता। आपको पता होना चाहिए कि आपमें सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ परमात्मा का निवास है।

३७. दंभ से द्वेष का जन्म होता है। यह हत्या और प्रतिशोध में प्रेरक है।

३८. ज्ञान का लक्ष्य है मुक्ति।

३९. ज्ञान और वैराग्य आत्मसाक्षात्कार तक ले जाते हैं।

४०. संसार की अपनी गति है, अपना लय है, कारण कि इसका प्रेरक है सर्वाधिक शक्तिमान् परमात्मा।

४१. ब्रह्म सभी प्राणियों की उत्पत्ति का पारमार्थिक स्रोत है।

४२. जबकि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का आत्मा में विलय हो जाता है, यह साधक की समाधि अवस्था होती है।

४३. माया, ईश्वर, जीव, जगत् ये सभी ब्रह्म के नाना नाम-रूपादि हैं।

४४. बन्धन और मुक्ति मन में रहते हैं, आत्मा में नहीं।

४५. त्यागवृत्ति में अपना हितचिंतन छोड़ देना चाहिए।

४६. अपना हितचिंतन छोड़कर ही आत्मनिष्ठा प्राप्त की जाती है।

४७. सागर में डूबते हुए उतराते व्यक्ति की रक्षा के लिए जैसे अचानक कहीं से नौका आ जाए वैसे ही भवसागर में डूबने वाले के लिए पूर्वकृत

पुण्य सहायक होते हैं।

४८. हरि का नाम स्मरण करके सभी दुःखों से मुक्ति पाइए तथा अनुभव करके उनका साक्षात्कार कीजिए। विश्वास करके निश्चय कीजिए। आत्मानुभूति प्राप्त करके दूसरों में इसका वितरण कीजिए। आगे बढ़िए—ईश्वर की ओर आगे बढ़िए।

४९. निश्चयपूर्वक विवेक कीजिए। विकासपूर्वक विस्तार कीजिए। जिज्ञासापूर्वक अनुसन्धान कीजिए।

५०. जब आप वास्तविक स्वरूप को पहचान लेंगे तो ईश्वर और संसार की वास्तविकता को भी समझ लेंगे।

५१. सत्य के साक्षात्कार के बाद त्रिपुटी का लय हो जाता है।

—:०:—

## दिव्योपदेश

### (पञ्चम अध्याय)

१. जो उदारता के बीज बोता है उसे दिव्य प्रेम-रूपी फल की प्राप्ति होती है।

२. प्रेम दे कर व्यक्ति अपने गौरव में चार चाँद लगाता है। प्रेम ले कर व्यक्ति कृतार्थ होता है।

३. मैत्री या दुर्भावना जो भी हम दूसरों को

देते हैं, बदले में हमें वही मिलता है—यह विधि का विधान है।

४. सत्कर्म ज्ञान से उत्पन्न होते हैं।

५. सन्त उच्च स्वर में पुकार कर कहता है : 'यहाँ न दिन है न रात ; यहाँ न जीव है न अजीव ; यहाँ केवल तुम्हीं हो। तुम सनातन चैतन्य हो।'

६. ईश्वर का रूप चर्मचक्षु से अगम्य है, लेकिन साधक अपनी ज्ञान-दृष्टि से उन्हें अपनी अन्तरात्मा के रूप में पहचानता है।

७. माया बड़ी रहस्यमयी है। इससे भी ज्यादा रहस्यमय है ब्रह्म।

८. चित्तशुद्धि के बिना आत्मसाक्षात्कार कभी सम्भव नहीं। चित्तशुद्धि दैवी साम्राज्य का राजद्वार है। अपने चित्त से शुद्ध पुरुष ही ईश्वर की महिमा को पहचान सकता है।

९. ईर्ष्या मन का पीलिया रोग है।

१०. आप किस चीज के लिए सबसे अधिक लालायित हैं? शायद उस चीज के लिए जो आपको अतिशय आनंद दे। वह प्राप्तव्य तो परमात्मा ही है।

११. ईश्वरेच्छा के सामने प्रारब्ध कुछ नहीं कर सकता।

१२. ईश्वर जो कुछ भी आदेश देता है, प्रकृति

उसका अक्षरशः पालन करती है।

१३. अहंकार को छोड़कर विनीतता को सीख सीखिए।

१४. मूर्तिपूजा में वर्तमान निष्ठा कालांतर में पराभक्ति का स्वरूप ग्रहण करेगी—उस ईश्वर के प्रति जिसका नाम-रूप नहीं।

१५. प्रकृति की रचना चातुरी को देखिए। इसने संसार का अन्तर्बाह्य रूप किस तरह सजाया है। इस पर विचार करेंगे तो ईश्वर की महिमा अपने आप समझ आएगी।

१६. 'सन्मात्रम् हि ब्रह्म' अर्थात् ब्रह्म की सत्ता सनातन है।

१७. ईश्वर के अतिरिक्त सब कुछ नश्वर है।

१८. वह कौन-सा आनंद है जो कभी विरस नहीं होता ? वह आत्मानंद है।

१९. आत्मा, पुरुष, ब्रह्म, चैतन्य आदि अनेक नामों में एक का ही अभिधान है।

२०. मन को हर तरह से अन्तर्मुख करने की कोशिश कीजिए।

२१. जबकि भक्तिभाव से अन्तःकरण की शुद्धि मिलती है तब निश्चय रूप से साधक में वैराग्य का उदय होता है।

२२. वैराग्य के बिना ध्यान कोई मतलब नहीं रखता।

२३. तपस्या के महत्व का उचित मूल्यांकन कीजिए।

२४. परमैश्वर्य के प्रति जिज्ञासु होने के पूर्व उसमें श्रद्धा होनी चाहिए।

२५. श्रद्धा से जीवन में गति है। इसके बिना जीवन विनष्ट हो जाए।

२६. मानव-प्रयत्न और ईश्वरीय अनुकम्पा परस्पर सम्बद्ध हैं।

२७. जो विवेकी होता है उसे सारा संसार दुःखमय नजर आता है।

२८. वैराग्य के बिना समाधि नहीं और समाधि के बिना आत्मज्ञान नहीं होता।

२९. आपके जीवन का सुमहान् उद्देश्य यही होना चाहिए कि आप अपने अन्तरात्मा का निर्विशेष परमात्मा के साथ तादात्म्य को समझ सकें।

३०. प्रकृति सदा आपको ईश्वरीयता की ओर प्रेरणा देती है।

३१. मृत्यु के बाद देहाध्यास अपने आप छूट जाता हो, ऐसी बात नहीं है। यह अवस्था तो जीवन-काल में ही प्राप्त करनी चाहिए।

३२. ईश्वर ने संसार की सृष्टि क्यों की? यह संसार कैसे और क्यों स्थित है? यह इसके अतिरिक्त कुछ और क्यों नहीं? इन सारे प्रश्नों का उत्तर अभी नहीं बल्कि ईश्वर-साक्षात्कार के

बाद ही मिलेगा।

३३. धर्म के माध्यम से मानव दिव्यता का प्रतीक बन जाता है।

३४. अहंकार आपका शत्रु है। यदि आप विनम्रता से मैत्री गाँठ लें तो अहंकार का दिवाला पिट जाए।

३५. यदि आपका अन्तःकरण शुद्ध हो, यदि आप में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य नहीं हो तो आप ईश्वर की इच्छा को जान सकते हैं।

३६. संसार के पदार्थ सुन्दर होते हैं लेकिन इनसे भी ज्यादा सुन्दर है मन और मन से भी ज्यादा सुन्दर है आत्मा।

३७. यह आत्मा सर्वथा सुन्दर है। यह सभी सुन्दर पदार्थों से भी सुन्दर है।

३८. अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनंदमय कोशों को पार कर साधक आत्मज्ञान की मंजिल तक पहुँचता है।

३९. इस नश्वर शरीर से अविनश्वर परमात्म-पद को प्राप्त करना ही सब का लक्ष्य होना चाहिए।

४०. सद्गुरु के प्रति आत्मसमर्पण करके आप परमात्मपद प्राप्त कर सकते हैं।

४१. क्रोधाग्नि में आपका वह सब कुछ नष्ट हो जाता है जो उत्तम, सौम्य और सुन्दर है।

४२. कामनाओं के पाश को विच्छिन्न कीजिए।

अपने भौतिक शरीर को अतिक्रान्त कीजिए। इस प्रकार आप ईश्वर के सुरम्य साम्राज्य में निर्भीक और स्वच्छंद विहार कर सकते हैं।

४३. इन्द्रियानुभूति की प्रामाणिकता नहीं है। इससे उत्पन्न ज्ञान अपने आपमें एक धोखा है।

४४. इन्द्रियों के द्वार बंद कीजिए, मन का कपाट बंद कीजिए, अपने अन्तस्तल में ज्ञान-दीप को बालिए—इस तरह आप ईश्वर के सम्मुख खड़े होंगे।

४५. गङ्गा के प्रवाह की भाँति आपकी ध्यान-विधि अबाध चलनी चाहिए।

४६. अपना मानस-दर्पण सभी मलिनताओं से रहित कीजिए जिससे कि वह स्थिर और अचंचल बन पाए।

४७. मन पर विजय प्राप्त करना कठिन अवश्य है, परन्तु असम्भव नहीं; इसलिए अहर्निश प्रयत्न कीजिए। आपको सफलता निःसन्देह मिलेगी।

४८. यदि आप ईश्वर से मिलना चाहते हैं तो आपको अपने अहंकार का मूल्य चुकाना पड़ेगा।

४९. अपने अवचेतन मन के विकारों से संभल कर रहिए। ये आपके जानी दुश्मन हैं। ये कभी भी छिप कर वार करेंगे, आपको पता भी नहीं चलेगा।

५०. ईश्वर स्वर्ग में है। ईश्वर का साम्राज्य

आपके अंदर विद्यमान है। मैं और मेरा पिता एक ही हैं। ये सब विचार बाइबिल के अनुसार आध्यात्मिक प्रगति के चिह्न हैं।

—:o:—

## दिव्योपदेश

### (षष्ठ अध्याय)

१. अहंता और ममता ही मिलकर 'माया' कहलाती है। मनुष्य को भ्रम में डालने वाली यही ईश्वर की निजी शक्ति है।

२. साहस, चित्तशुद्धि, सत्सङ्ग, हरिभजन, करुणा, ईश्वरपूजा आदि प्रमुख दैवी सम्पदायें हैं जिनका साधक में होना अनिवार्य है।

३. ईश्वर की अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए साधक में सच्ची लगन और निरंतर पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

४. मन के विकारों को शान्त करके, उसे नितांत स्वच्छ करके सुचारु सिंहासन का रूप दीजिए जिस पर ईश्वर आकर विराजमान हो सकें।

५. अज्ञान-रूपी दैत्य ने आपको दबोच रखा है, आप ज्ञानलाभ करके अपना उद्धार कीजिए।

६. सेवा, भक्ति और ज्ञानमय जीवन ही दिव्य जीवन है।

७. आत्मा उस सागर की भाँति है जिसका कोई कूल-किनारा नहीं।

८. मनुष्य का ईश्वर में अभिनिवेश ही धर्म का उद्देश्य होता है।

९. इस सृष्टि-रूपी विशाल ग्रन्थ में हमारा जीवन एक अध्याय जैसा है।

१०. जीवन में प्रगतिशील उसे ही माना जाएगा जिसका हृदय अत्यधिक कोमल बनता जा रहा है, जिसका रक्त उष्ण और मस्तिष्क सक्रिय होता जा रहा है; इसके अतिरिक्त जिसका आत्मा शान्ति में प्रवेश करता जा रहा है।

११. प्रेम, विनम्रता, ध्यान और प्रार्थना के बीज बोकर क्रमशः शान्ति, सम्मान, ज्ञान और ईश्वरानुकम्पा की फसल काटी जाती है।

१२. न किसी वस्तु को ठुकराना चाहिए और न किसी वस्तु के लिए तरसना चाहिए।

१३. जहाँ स्वार्थ नहीं है वहाँ शान्ति, आनंद और प्रकाश है।

१४. अपने हृदय में प्रेम की बाती जगा कर सर्वत्र प्रेम का प्रकाश विकीर्ण कीजिए।

१५. ईश्वर में श्रद्धावान् बनने से साधक का साधना-पथ उज्ज्वल बनता है।

१६. अत्यधिक उत्कण्ठा, दृढ़ विवेक, निरंतर अभ्यास — ये सब प्रभु ईश्वर-साक्षात्कार में सहायक

होते हैं।

१७. अहंकार का नाश कीजिए और आप सनातन परमात्मा से एकत्व स्थापित कर सकेंगे।

१८. अपने अन्तस्तल में निहित दिव्यत्व को ध्यान के माध्यम से जगाया जाता है।

१९. तृष्णा के अभाव से आध्यात्मिक विकास परिलक्षित होता है।

२०. साधना जीवन भर की जानी चाहिए। आपके प्रत्येक दिन, प्रतियाम और क्षण साधनामय रहे। इस पथ में हजारों कठिनाइयों के बावजूद आप आगे बढ़िए। हर कदम पर ईश्वर को अपना पथ-प्रदर्शक मानिए। तब कोई कारण नहीं कि आप विघ्नों में उलझ रहें या भवसागर न पार कर पायें।

२१. इस संसार-रूपी सागर में जीवन-रूपी नौका के खेवनहार परमात्मा हैं। उस पर आरूढ़ होकर पार पायें और अनन्त सुख और ऐश्वर्य का आगार हासिल करें।

२२. चक्षु, नासिकादि इन्द्रियां अनेक हैं लेकिन प्राणवायु एक ही है जो इन सबका नियामक है।

२३. नाम-रूप अनेक हैं किन्तु उनमें समाविष्ट चैतन्य एक ही है।

२४. सभी ध्वनियों और शब्दों का उद्गम स्थान है ॐ।

२५. प्रार्थना वह आध्यात्मिक भोजन है जिससे

आप पुष्टि पाते हैं। इसके बिना आत्मा क्षीण होने लगता है।

२६. अपना हिस्सा दूसरों को सौंपते हुए प्रसन्नता का अनुभव कीजिए।

२७. प्रार्थना से चित्तशुद्धि मिलती है। सेवा से आत्मोत्थान होता है। प्रार्थना और सेवा से क्रमशः आंतरिक सङ्कीर्णता मिटती है और आत्मा में उल्लास जागता है।

२८. आवागमन की अनन्त शृङ्खला में यह जीवन तो मामूली-सी एक कड़ी है। एक जीवन से हम आगे एक कदम प्रगति करते हैं।

२९. प्रार्थना और ध्यान आत्मा के लिए अन्न और जल हैं।

३०. प्रार्थना के बीज बोकर उसे जप-रूपी जल से सींचिए। चित्तशुद्धि का बाढ़ लगा दीजिए तथा अशुभ वृत्ति-रूपी अनावश्यक घासफूस को उखाड़ फेंकते रहिए। आप अमर फल को प्राप्त करेंगे।

३१. सत्सङ्ग से साधक के हृदय में प्रेरणा की अग्नि दहकती रहती है। सत्सङ्ग से आध्यात्मिक पुष्टि मिलती है। सत्सङ्ग ही मोक्ष का द्वार है।

३२. अंधे बन कर देखिए। बहरे बन कर सुनिए। अपनी हीन मनोवृत्तियों के प्रति कम जागरूक रहिए। आप अनन्त जीवन का लाभ करेंगे।

३३. सभी सुकर्मों में उत्तम है सत्य। सभी

आभूषणों में उत्तम है शान्ति। सभी वैभवों में उत्तम है आत्मज्ञान। सभी निधियों में श्रेष्ठ है त्याग।

३४. सभी क्लेशों की जननी है ममता। यह माया से प्रसूत है।

३५. जो बुद्धिशाली पुरुष सत्य का अनुसरण करता है, वह मृत्यु को परास्त कर देता है।

३६. कूटनीति उस ढकोसले का नाम है जिसे लोग कर्त्तव्य समझ कर करते हैं।

३७. जो ब्रह्मज्ञानी हैं वे ही वास्तव में शिक्षित हैं। जो डी० लिट् या पी-एच० डी० उपाधि धारण करने वाले हैं उन्हें तो अशिक्षित ही समझा जाना चाहिए।

३८. अहंकार के नाश से आत्मसाक्षात्कार अपने आप हो जाता है। ज्ञान के समागम से अज्ञान का नाश अपने आप हो जाता है।

३९. जिस व्यक्ति में भक्ति, श्रद्धा, आत्म-संयम, सद्गुण और त्यागभाव होते हैं, वह ईश्वर का भक्त कहलाता है।

४०. परमार्थ सत्ता ही वास्तव में सत्ता के नाम से ज्ञातव्य है। यही परब्रह्म और परम सत्य है।

४१. करुणा कोई दुर्बलता नहीं। यह तो दैवी शक्ति है।

४२. एक महात्मा न कुछ स्वीकार करता है, न कुछ अस्वीकार करता है, न किसी वस्तु के लिए तरसता है और न किसी से झिझकता है।

४३. जब ईश्वर की कृपा होती है तभी विनम्रता, त्यागभाव और प्रार्थना की मनोवृत्ति जाग्रत होती है।

४४. श्रद्धा, विनम्र भाव और प्रार्थना विधि से ईश्वरेच्छा पर अपने को छोड़ दीजिए।

—:o:—

## दिव्योपदेश

### (सप्तम अध्याय)

१. सेवा, भक्ति और ज्ञान—इन तीनों के सम्मिलित रूप का नाम है दिव्य जीवन।

२. जबकि निजी प्रयत्नों में ईश्वरीय अनुकंपा का पुट हो तो आत्मसाक्षात्कार सर्वथा संभव होता है।

३. ईश्वरानुकंपा से ही दिव्य प्रेम का अभ्युदय होता है।

४. उस प्रकाश को देखिए जिससे सारा संसार प्रकाशमान् है।

५. जहाँ पूर्ण सत्य और पूर्ण ज्ञान की मर्यादा है, वहाँ निःसंदेह पूर्ण आनंद का साम्राज्य है।

६. जानबूझकर या अनजाने जैसे भी ईश्वर

का नामोच्चारण किया जाय, वह सांसारिक पाप-तापों से मुक्ति देता है।

७. मन के प्रतिकूल चलने से संकल्प-शक्ति बढ़ती है।

८. मन की वृत्तियों को साक्षिभावेन देखते रहने से आप शांति लाभ कर सकते हैं।

९. आप अविचल आत्मा से अपना सम्बन्ध स्थापित करें। इस तरह मन की चंचल वृत्तियाँ आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगी।

१०. वह कोई दिव्य शक्ति है जो मन, वचन और कर्म का ही रूप निर्धारित नहीं करती, आपके प्रारब्ध का भी निर्माण करती है।

११. आदि और अन्त तो केवल भ्रम है। आत्मा का न आदि है न अन्त।

१२. आपकी आँखों में करुणा, वाणी में माधुर्य और हाथों में कोमलता होनी चाहिए।

१३. ईश्वर की अनुकंपा से त्याग भावना का अभ्युदय होता है, जो अनंत आनंद का सागर है।

१४. रजोगुण या तमोगुण से डाँवाडोल मत होइए। सत्त्व में अवधारण कीजिए। आप समाधि लाभ करेंगे।

१५. दत्तचित्त होकर बैठिए। पूरी तरह से शरीर को ढील दीजिए। नियमित रूप से ध्यान कीजिए। आप शीघ्र आत्मसाक्षात्कार करेंगे।

१६. सुख और ऐश्वर्य के मामले में असंतोष सारी आपदाओं का मूल है। अतः जो कुछ मिलता है उसमें संतोष कर सुखी रहिए।

१७. आप जो भी सांसारिक आनंद का उपभोग करते हैं, वह धर्म के दायरे में करें।

१८. दैवी विधि-विधानों के अनुकूल ही अपने मन-बुद्धि से संपर्क रखिए, तभी आपका जीवन कुछ मतलब रख पाएगा।

१९. आत्मसंयम ही आत्मिक विकास में सब प्रकार से सहायक है।

२०. आप इस तथ्य से सहमत रहें कि ईश्वर ने मनुष्य के रूप में अपने को ही अभिव्यक्त किया है। आपका कर्त्तव्य है कि आप अपने सच्चे स्वरूप में अवस्थित हों।

२१. जिनका चित्त प्रशांत है, जो आत्मसंयम को धारण करते हैं तथा जिनकी इन्द्रियाँ भी वशीभूत होती हैं, वे परमात्मा को अपना लक्ष्य मानते हैं।

२२. जो सरल चित्त हैं, ईश्वर उनके साथ चलता-फिरता है ; जो नम्र हैं, ईश्वर उनके प्रति अपना रहस्य खोल देता है ; जो भद्र हैं, ईश्वर उनके प्रति विवेक प्रदान करता है तथा जो दम्भी हैं, ईश्वर उनसे अपना पीछा छुड़ाता है।

२३. प्रयत्न का नाम साधना है। इनके परिणाम सिद्धियाँ हैं परन्तु लक्ष्य तो आत्म-साक्षात्कार

है। उत्कट साधना द्वारा परमात्मपद की प्राप्ति करनी चाहिए।

२४. जीवन के संघर्षमय पथ में उत्थान-पतन आते हैं, कभी हँसना पड़ता है कभी रोना पड़ता है। इसमें आप विक्षिप्त मत होइए। यह सोचिए कि परमात्मा अपनी कसौटी पर कस कर आपको अपने अनुसार रूप देना चाहता है।

२५. आत्मा पर अविद्या का इतना गहन आवरण है कि हम शनैः शनैः अपने आत्मा को भूल ही चले हैं।

२६. ज्ञानार्जन द्वारा भूतप्रकृति से और मनोमय जगत् से अपने को ऊपर उठाइए। आपको ईश्वराभिमुख होना पड़ेगा।

२७. प्रार्थना ही सुयोग्य औषधि है जिससे मानसिक दुर्वृत्तियों का नाश किया जा सकता है। अतः प्रार्थना अवश्य कीजिए।

२८. जीवन की हर समस्या का समाधान है प्रेम। इससे जनजीवन का उद्धार, प्रगति और विकास सब कुछ संभव है।

२९. अध्यवसायी लोगों के साथ ईश्वर का निरंतर वास है।

३०. ईश्वर की अनुकंपा तभी फलीभूत होती है जबकि साधक की साधना में लगन और सच्चाई होती है।

३१. आत्मनिष्ठ जीवन ही वास्तविक जीवन है। यदि आप भौतिक तत्त्व में निष्ठा रखें तो पिछड़ जायेंगे।

३२. ईश्वर का वह संसार परम रम्य है, जो हमारे इर्द-गिर्द है, किन्तु वह संसार और भी ज्यादा रम्य है, जो हमारे अंदर विद्यमान है।

३३. जब आप ईश्वर के सम्बन्ध में सोचते हैं तो आपका शरीर, मन और अन्तस्तल रोमांचित हो उठता है। जब आप उनका नामोच्चार करते हैं तो स्नायुवर्ग शीतल प्रतीत होता है। जब आप उन्हें प्रेम करते हैं तो आपमें शांति और आनंद अवतरित होता है। जब आप उनका साक्षात्कार करते हैं तो आपके कर्म-बन्धन बिखर जाते हैं।

३४. सच्चे अर्थ में शूरवीर वही है जो काम, क्रोध, लोभ मोहादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ले।

३५. यदि आप अच्छे रास्ते पर चल रहे हैं, आपका अन्तःकरण परिशुद्ध है, तो बेफिक्र होकर घूमिए। कौन क्या कहता है, परवाह मत कीजिए।

३६. मेरे पास यह है, यह नहीं है, मैं अपूर्ण और अभाववान् हूँ इत्यादि विचार तब तक आपको परेशान करेंगे जब तक कि आप आत्मसाक्षात्कार नहीं कर लेते।

३७. सर्वतोभावेन पूर्णता का आभास तो केवल ज्ञानी को ही होता है।

३८. कृतघ्नता एक अपराध नहीं है, बल्कि पाप है।

३९. सच्चे दिल से की गई प्रार्थना से शांति मिलती है। अपना भाग उदारतापूर्वक दूसरों को दे कर चित्त प्रफुल्लित होता है। निरंतर ध्यान के अभ्यास से ब्रह्मानंद की उपलब्धि होती है।

४०. विवेक की प्रकाशयष्टि अपने हाथ में लेकर ध्यान के पथ पर चलिए। यदि आपका पथ-प्रदर्शक वैराग्य है तो आपको लक्ष्य की प्राप्ति अवश्यमेव होगी।

४१. चतुराई से किया गया मजाक ही अपमान कहलाता है।

४२. जिसने सूर्य को देखा है वही पानी में सूर्य की परछाईं देख कर कह सकता है कि यह परछाईं सूर्य की है। वैसे ही जिसने ईश्वर को अपने अन्तः-करण में देखा है वह बतला सकता है कि सारा संसार ईश्वर का प्रतिबिम्ब है।

४३. अहिंसा, अभय और असंग—ये तीन गुण विद्वान् के अंदर रहते हैं।

४४. यदि आप ईश्वर-साक्षात्कार करना चाहते हैं तो भय, घृणा और कायरता को मन से सर्वथा निकाल दीजिए।

४५. जैसे उर्वर भूमि में बीज सरलता से अंकुरित और परिवर्धित होते हैं वैसे ही विकारों से रहित चित्त में उत्तम विचार फूलते-फलते हैं।

४६. हमेशा समाधानपरक एवं रचनात्मक विचारों का विकास कीजिए। एक मामूली-सा भी बुरा विचार आपको पतन में खींच ले जायगा।

४७. जहाँ स्वल्प भी अहंकार की भावना रही, वहाँ न श्रद्धा टिक सकती है, न भक्ति और न ज्ञान।

४८. जब घर का मालिक सोता है तो चोरों की बन आती है। वैसे ही आत्मा यदि निद्रित हो तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्यरूपी चोरों की चाँदी है।

४९. जब भारतवासी जलपान लेते होते हैं तो आस्ट्रेलियावासी दोपहर का भोजन खाते रहते हैं तथा अमेरिकावासी रात्रि का भोजन खाते रहते हैं। समय तो माया का खेल है। उस कालातीत परब्रह्म को जानिए, समझिए।

५०. एक वृक्ष की लकड़ी से आप मकान की शहतीर बनायें या उसी लकड़ी को जला कर कोयला बना डालें। आपका मन भी उसी तरह है। इसे आप आध्यात्मिक रङ्ग में रँग लें अथवा अविद्या में पड़े सड़ने दें।

५१. जिसने आत्मसाक्षात्कार कर लिया है, शांति उसी की निधि है।

५२. जो चैतन्य है, वही सत्य है। जो ब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म हो जाता है।



५३. जिस व्यक्ति के पास धन के अलावा

कुछ नहीं है, उसे तो हम महादरिद्र समझते हैं।

५४. अपने अतीत के दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप मत कीजिए। अब जो आप बनना चाहते हैं, बन कर दिखाइए।

—:०:—

## दिव्योपदेश

### (अष्टम अध्याय)

१. संसार में रहते हुए साधकों का चित्त जितना ही विशाल, भावना जितनी ही निःस्वार्थ-परक और जीवन जितना ही परहितनिरत होता है उतनी ही अधिकाधिक मात्रा में उनका आध्यात्मिक विकास मापा जाता है।

२. केवल सन्त ही वास्तविक सुख और सन्तोष का अनुभव करते हैं।

३. जीवन में तनाव और मतभेद अविवेक के परिणाम हैं।

४. संसार के विषय आपको नहीं बांधते, उनके प्रति इच्छाओं से आप बन्धन महसूस करते हैं। अतः इच्छाओं का हनन कर आप सुखी होइए।

५. हमें अपनी सत्ता की जानकारी है; इस लिए हम अपनी सत्ता की घोषणा करते हैं। यदि हमारी सत्ता नहीं होती तो हम घोषणा भी नहीं

करते। इससे स्पष्ट है कि जहाँ सत्ता है, वहाँ चैतन्य भी।

६. जितना ही अधिक निष्काम कर्म किया जाय उतनी ही अधिक चित्तशुद्धि प्राप्त होगी। जितनी अधिक चित्तशुद्धि होगी उतना ही अधिक हृदय विशाल बनेगा। जितना ही विशाल हृदय होगा उतना ही समीप ज्योतिष्पुंज नजर आएगा और यह ज्योतिष्पुंज जितना ही समीप होगा मुक्ति-पद तथाविध शीघ्र प्राप्त होगा।

७. संसार में कामकाज करते हुए भी शान्त बने रहिए। बहुत सारे उत्तरदायित्वों के बीच भी अनासक्त बने रहिए। हजारों लोगों से मिलना-जुलना पड़े फिर भी आप अपने हृदय में एकान्त का अनुभव कीजिए। भावों के उतार-चढ़ाव की अवस्था में भी सौम्य बने रहिए।

८. सुखों की अपेक्षा दुःखों को आमन्त्रित कीजिए ; कारण कि दुःख में चित्तशुद्धि की अधिक सम्भावना है जबकि सुख में केवल बन्धन ही बन्धन है।

९. चेतन, अवचेतन और निश्चेतन मन में क्रमशः प्रारब्ध, आगामी और संचित कर्मों का भण्डार रहता है।

१०. चेतन,अवचेतन और निश्चेतन मन क्रमशः जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में सक्रिय होते हैं।

११. ममता-रूपी ईंधन अविद्या-रूपी अग्नि को प्रज्वलित करती है। ईंधन देना बन्द कर दिया जाय तो अग्नि स्वयं बुझ जाएगी।

१२. अपनी निराशाओं और असफलताओं के लिए अपने प्रारब्ध और परमात्मा को बदनाम मत कीजिए। घोर संघर्ष द्वारा अपने मन्तव्य को प्राप्त करने की चेष्टा कीजिए।

१३. भोगों के बिना कर्मों का क्षीण होना बहुत दुष्कर है। लेकिन आप विवेक से अपना दृष्टिकोण बदल सकते हैं और उनके अच्छे, बुरे परिणाम से असम्पृक्त रह सकते हैं।

१४. एक ज्ञानी के व्यक्तित्व से पंचविध किरणें फूटती हैं—दिव्य ज्ञान, ईश्वरानुराग, विश्वभावना, परमार्थ और चित्त की शुद्धि।

१५. ईश्वर को अपने हृदयमंच पर विराजमान देखना, उन्हें बाह्य प्रकृति में भी परखना अपि च समस्त प्राणियों में उन्हें अनुस्यूत समझना—यही दिव्य जीवन का सिद्धान्त है।

१६. भक्तिभाव तथा सेवा के बिना आप करोड़ों जन्मों में भी अद्वैतस्वरूप के साक्षात्कार की बात जबान पर नहीं ला सकते।

१७. विचार ही वाणी का रूप लेता है और कर्म का भी।



१८. सुन्दर और सौम्य विचारों को मन में

स्थान दीजिए, आपकी वाणी वैसी ही बनेगी और आपके कर्म वैसे ही बनेंगे।

१९. ईश्वर को सर्वत्र विराजमान देखिए। आँखों के लिए यह उत्तम सेव्य पदार्थ है।

२०. सौम्य और सुन्दर विचारों को मन में आश्रय दे कर आप उत्तम रीति से देख सकते हैं, सुन सकते हैं, स्वाद ले सकते हैं और चिन्तन कर सकते हैं।

२१. आत्मनिष्ठा स्वधर्म है जबकि शरीर, मन और बुद्धि में निष्ठावान् होना परधर्म है।

२२. कपड़ों का त्याग करके कोई अवधूत नहीं बनता बल्कि मानसिक त्याग से अवधूत बनता है।

२३. अहंता और ममता के विचार जब तक आपको परेशान कर रहे हैं, आप आध्यात्मिक विकास की बात भी नहीं सोच सकते।

२४. आप इस भौतिक संसार में काल के वशवर्ती नहीं, आप तो ईश्वर के अक्षय अंश हैं। इस भावना को परिपक्व कीजिए और मुक्त होकर विचरिए।

२५. विनम्रता और वैराग्य—ये साधक के दो चक्षु हैं। इनके बिना साधक अन्धा ही है, भले ही उसके पास और सब कुछ हो।

२६. मन्दिर वह सुरम्य निकेतन है जिसमें परमात्मा अपने प्रतीक रूप से विराजमान रहता है।

२७. एक ज्ञानी अथवा जीवन्मुक्त की अवस्था वर्णनातीत होती है। बाहर से इसमें मानवोचित सभी गुण हैं किन्तु अंदर से अतिमानव है, मानव रूप में वह ईश्वर है।

२८. ईश्वर का स्वभाव है प्रेम। उनकी भाषा है मौन।

२९. अपनी क्षमता से अधिक देना उदारता है। अपनी आवश्यकता से अधिक लेना लोभ है।

३०. इन्द्रियों के सुख में परमानंद की तृप्ति ढूँढ़ना मरीचिका से प्यास बुझाने की भाँति है।

३१. हम दुःख और सुखों को अनुभव से पूर्व ही पसन्द कर लेते हैं।

३२. प्रकृति के तीनों गुणों के प्रभाव से भ्रमित मानव सब प्राणियों में अन्तर्हित उस परम श्रेष्ठ परमात्मा को नहीं पहचानता।

३३. ईश्वर की उस शक्ति का नाम माया है जिससे एकता के स्थान में अनेकता तथा विशुद्ध चैतन्य के स्थान पर नाम-रूप नजर आते हैं।

३४. जल-प्रवाह से जैसे कीचड़ बह निकलता है, वैसे ही भक्तिप्रवाह से अविद्या दूर हो जाती है।

३५. आपके सन्देह मरुमरीचिका की भाँति हैं, जबकि गुरुदेव हरिताभ भूमि के सदृश हैं। आप मरुमरीचिका की ओर न जा कर हरियाली भूमि की ओर बढ़ें : आपको परम शांति मिलेगी।

३६. अन्तर्मुख मन 'आत्मा' ही है जबकि बहिर्मुख मन 'संसार' है।

३७. दानशील व्यक्ति अपनी धन-सम्पदा से सुखी होता है जबकि कंजूस व्यक्ति अपनी धन-सम्पदा से दुःख उठाता है।

३८. विनम्रता को अपना सहचर बनाइए। सारा संसार आपका मित्र बन जाएगा।

३९. पद और मर्यादा से सम्पन्न व्यक्ति में विनम्र भाव भी हो तो यह उसका एक आभूषण है।

४०. जहाँ आत्मविस्मृति है वहाँ ईश्वर की अनुकम्पा बरस पड़ती है।

४१. यदि आप में संतोष है तो शांति के साम्राज्य में विहार कीजिए।

४२. सोना और चाँदी तो धनाभिमानी सेठों की सम्पत्ति हैं जबकि ईश्वर परायण दीनहीनों की सम्पत्ति उनकी मानसिक शांति है।

४३. लोभ का तलछट पी कर मतवाले मत बनिए अपितु भक्ति का रसास्वाद करके मतवाले बनिए।

४४. जो लोभ के चंगुल में पड़ जाते हैं वे अपने आत्मा को नहीं पहचानते और यह सबसे बड़ी दरिद्रता है।

४५. इच्छाओं की शृङ्खला को तोड़ फेंकिए और दुःखद्वन्द्वों से मुक्ति प्राप्त कीजिए।

४६. किसी वस्तु की प्राप्ति की आशा में जितना सुख है उतना उस वस्तु को पाने में नहीं।

४७. ईश्वर में श्रद्धालु जन प्रार्थना द्वारा चित्तशुद्धि प्राप्त करते हैं। ऐसे चित्त में परमात्मा की ज्योति अवतीर्ण होती है और साधक मुक्ति को प्राप्त करता है।

—:०:—

## दिव्योपदेश

### (नवम अध्याय)

१. नैतिक पूर्णता की आधारभूमि से साधक बढ़ता है। वह चित्तशुद्धि, एकाग्रता, तत्त्वचिन्तन, सद्विचार, ध्यान, ज्योतिर्दर्शन आदि विभिन्न पड़ावों को पार करता हुआ ब्रह्मानन्द-रूपी परमोच्च शिखर पर पहुँचता है, वहाँ पहुँच कर वह अमरपद को प्राप्त कर लेता है।

२. हे सत्य पथ के धीर पथिक! शनैः शनैः पग बढ़ाइए। आप में धैर्य और अध्यवसाय की प्रचुरता होनी चाहिए।

३. विघ्नबाधाओं का क्या अभाव है? साधना पथ अति दुष्कर और कठिन है किन्तु असम्भव कदापि नहीं। अतः साहस ले कर आगे बढ़िए।

४. स्वार्थनिष्ठा से तात्कालिक सफलता मिल जाती है लेकिन वह स्थाई कदापि नहीं। अतः

अच्छा है अभी से निःस्वार्थ बनें।

५. केवल बौद्धिक पाण्डित्य से कुछ होने का नहीं। वास्तविक ज्ञान तो आध्यात्मिक विकास से ही सम्भव है।

६. वास्तविक ज्ञान वह है जिससे आप सत्यासत्य, नश्वर और अविनश्वर का भेद समझते हैं।

७. कालेज की शिक्षा अधकचरी है; क्योंकि वहाँ ज्ञान की सीमा निर्धारित रहती है। (वास्तव में ज्ञान सीमाओं से परे है।)

८. दर्पण पर जब तक मलिनता छाई होती है, अपना चेहरा नहीं दीखता। वैसे ही अपने हृदय के विकारों को दूर भगाया जाए तो आत्मबोध सहज हो जाता है।

९. जो संसार के बाहरी कोलाहल पर चित्त स्थापित करते हैं वे आत्मा की मधुर वाणी को नहीं सुन पाते।

१०. यदि आप दूसरों को सुखी कर सकें तो आपको स्वयं भी सुख प्राप्त करने का अधिकार मिले।

११. जैसे जंग लग जाने से यन्त्र बेकार हो जाता है वैसे ही आलस्य से मन शिथिल हो जाता है।

१२. आप यात्री हैं और यह संसार एक धर्मशाला है। संसार में इस तरह रहिए जैसे आप

धर्मशाला में रहते हों। यह समझ लीजिए कि यहाँ की कोई वस्तु आपकी नहीं है।

१३. जब आप मूर्ति पूजा करते हैं तो देव-प्रतिमा को ईश्वर की प्रतिमा के रूप में देखिए, पुनः देव-प्रतिमा में ईश्वर विराजमान पाइए और अन्त में प्रतिमा को भूल जाइए और ईश्वर को ही स्मरण रखिए जो स्वभाव से नामरूपादि-रहित है।

१४. स्वस्थ शरीर के संरक्षण के लिए भोजन खाया जाता है और उसे विधिपूर्वक पचाया जाता है। वैसे ही स्वस्थ मन के संरक्षण के लिए गुरुपदेशों का श्रवण किया जाता है और उसे पुनः मनन द्वारा आत्मसात् किया जाता है।

१५. यदि आप शरीर और मन की उपेक्षा करें तो मृत्यु को जीत सकते हैं।

१६. गुरु की ओर चुपचाप निहारते रहने से गुरुभक्ति नहीं सिद्ध होती। अवज्ञाकारिता, अनुशासनहीनता, आत्मवंचना और दुराग्रह भी गुरुभक्ति में बाधक हैं।

१७. एक ज्ञानी पुरुष हाथ फैलाता है कुछ देने के लिए जबकि एक अज्ञानी पुरुष हाथ फैलाता है कुछ लेने के लिए।

१८. उपहार का मूल्य रूपयों में नहीं आँका जाता बल्कि उस श्रद्धा से आँका जाता है जिससे समन्वित इसे आपने दिया है।

१९. परोपकार करके उसे भूल जाना, सहानु

भूति का प्रदर्शन, दया और दानशीलता के भाव; ये सब इष्टकाएं हैं जिनसे दिव्य जीवन की मंजिल खड़ी की जाती है।

२०. जो धन नष्ट हो गया हो, उसे मेहनत से पूरा किया जा सकता है। जो ज्ञान नष्ट हो गया हो, उसे अध्ययन करके पूरा किया जा सकता है। लेकिन जो समय नष्ट हो गया हो, वह किसी भी प्रकार पूरा नहीं किया जा सकता।

२१. नदियाँ जैसे गन्दे पदार्थों को बहा ले जाती हैं वैसे ही आप काम-क्रोधादि विकारों को बहा ले जाएं फिर भी शुद्ध रहें।

२२. आप विवेक-वृक्ष की छाया में बैठें तो कामक्रोधादि से मुक्ति मिल जाए।

२३. जबकि आप अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के पीछे भाग-भागकर पसीने से तर हो रहे हों, अच्छा रहे आप सन्तोष के शीतल शिखर पर आरुढ़ हो जाएं।

२४. सूर्य की किरणें सब पर पड़ती हैं किन्तु चिकनी धातु पर उनका बिम्ब चमकता है। वैसे ही दिव्य ज्योति सर्वत्र विकीर्ण है किन्तु विशुद्ध अन्तःकरण पर उसका बिम्ब पड़ता है।

२५. सूर्योदय से जैसे फूल खिल उठते हैं, वैसे ही प्रार्थना से मानवता धन्य होती है।

२६. भक्तिभावपूर्वक ईश्वर का नामस्मरण एक ही बार कर लिया जाय तो श्रेष्ठ है। बिखरे

हुए मन से अनेक बार का स्मरण भी वृथा है।

२७. सूर्य जगत् के एक भाग से अस्त हो कर दूसरे भाग पर अवतरित होता है। वह यद्यपि हमारी आँखों से ओझल होता है फिर भी उसकी सत्ता होती है। उसी तरह आत्मा भी शरीर से पृथक् हो कर मरता नहीं।

२८. अज्ञानी पुरुष दूसरों को सुधारने की धुन में रहता है जबकि ज्ञानी पुरुष अपने को सुधारने की धुन में रहता है।

२९. अध्यात्मतत्त्व की जिज्ञासा-रूपी पङ्ख लगा कर धरती से स्वर्ग में उड़ जाइए।

३०. जैसे वर्षा का जल भूमि को बीजारोपण के उपयुक्त बनाता है वैसे ही वैराग्य चित्त को ज्ञानोपलब्धि के लिए उपयुक्त बनाता है।

३१. बुरे विचार उस हृदय में प्रवेश नहीं कर सकते जिसके द्वार पर ईश्वरीय विचारों के पहरेदार खड़े हैं।

३२. भूखे पेट में जो पीड़ा होती है वह खाना खा लेने पर बंद हो जाती है। आध्यात्मिक विचारों के अभाव में जो दुःख होता है वह आध्यात्मिक विचारों को अपने में भर लेने से दूर हो जाता है।

३३. बाहरी संघर्षों से त्राण पाने के लिए हमें आंतरिक निर्जनता में गोता लगाना होगा।

३४. शरीर को नीरोग बनाए रखने के लिए

जैसे निद्रा आवश्यक है, वैसे ही आत्मा का प्रसाद भाव बनाए रखने के लिए आंतरिक शांति की आवश्यकता है।

३५. जिस व्यक्ति को अपनी जिह्वा पर नियन्त्रण है वह किसी दुर्विजेय योद्धा से कम नहीं है।

३६. अपने हृदयमञ्च से कामादि विकारों को बाहर खदेड़ दीजिए। इन्होंने बलात्कार से वहाँ अपना राज्य कायम कर लिया है। प्रेम, चित्त-शुद्धि और शांति रूपी सद्विचारों को वहाँ समासीन कीजिए जो वास्तव में राज्याधिकारी हैं।

३७. एक सामान्य व्यक्ति विचारों का दास है जबकि एक ज्ञानी अपने विचारों का सम्राट् है।

३८. संसार में आज विजय मिलती है तो कल पराजय भी। लेकिन एक बार अपनी मन-बुद्धयादि पर विजय पा लेने वाला सर्वदा के लिए विजयी है।

३९. काम करने से पूर्व सोचना बुद्धिमत्ता है। काम करते समय सोचना सतर्कता है। काम कर चुकने पर सोचना मूर्खता है।

४०. किसी व्यक्ति को बुरा नहीं कहना चाहिए। उसके अन्तर्गत सत्य तत्त्व से उसका परिचय कराइए और उसे सहायता कीजिए कि वह अपने स्वरूप को पहचान सके।

४१. धर्म का मन्दिर करुणा, प्रेम, शुचिता

और ज्ञानरूपी चार स्तम्भों पर आधारित है। इस मन्दिर का प्रवेशद्वार है निष्काम सेवा।

४२. अतीत और अनागत तो स्वप्न हैं। जो वर्त्तमान क्षण है, वह वास्तविक है। अपने वर्त्तमान क्षण को दिव्य रूप दीजिए और आप परमानंद पद को प्राप्त करेंगे।

४३. परनिंदा को विषधर समझ कर छोड़ दीजिए। आप वृथा ही इसके शिकंजे में पड़कर पछतायेंगे।

४४. जहाँ सत्य है वहाँ वैमनस्य हो नहीं सकता।

४५. जो आज दुःख उठा रहे हैं उन्हें समझना चाहिए कि यह उनके पूर्व कर्मों का फल है। अब भी समय है कि पुण्य कर्म करके आगामी समय में सुख लाभ का मार्ग प्रशस्त करें।

—:o:—

## दिव्योपदेश

(दशम अध्याय)

१. औषधि खा कर जैसे कोई सुषुप्ति अवस्था में चला जाता है वैसे ही सांसारिक सुख-भोगों में लिप्त हो कर व्यक्ति अविद्या-रूपी सुषुप्ति अवस्था में चला जाता है।



२. एकान्त चित्त से सभी बोधगम्य पदार्थों

का निराकरण कीजिए। जो बच रहता है वही आत्मा है।

३. संगीत का सैद्धान्तिक ज्ञान आपको संगीतज्ञ नहीं बना सकता—क्रियात्मक ज्ञान अपेक्षित है। इसी तरह आत्मा का शाब्दिक ज्ञान आपको ज्ञानी नहीं बना सकता, क्रियात्मक ज्ञान अपेक्षित है।

४. जहाँ आप आत्मा को ढूँढते हैं, यद्यपि वह वहाँ विद्यमान है, पर उसी तरह नहीं दीखता जैसे अंधेरे कमरे में वस्तुयें नहीं दीखती हैं। प्रकाश के अवतरण से जैसे वस्तुयें दीखने लगती हैं, वैसे ही ज्ञान की प्राप्ति से आत्मा का साक्षात्कार होता है।

५. बौद्धिक क्रियाकलाप से आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता अपितु मन की वृत्तियों के अवरोध से होता है।

६. बौद्धिक प्रयत्नों से यदि आप आत्मसाक्षात्कार करना चाहते हैं तो यह वैसी ही बात होगी जैसे कोई अपनी परछाईं के शिरोभाग पर अपना पाँव रखना चाहे।

७. अपने प्रशान्त मन से यदि आप अपनी दो अनुभूतियों के बीच का समय जान लें तो आप विशुद्ध चैतन्य की एक झाँकी पा सकते हैं।

८. अपने मन की बहिर्मुख वृत्तियों का अवरोध कीजिए। बड़ी अवधानता से इनका निरीक्षण कीजिए। आप ईश्वर-साक्षात्कार कर पायेंगे।

९. आत्मा हमारी जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओं के बीच इस तरह पिरोया हुआ है जैसे फूलों की माला में सूत्र पिरोया होता है।

१०. जैसे सूर्य की किरणें अदृश्य हैं किन्तु सब पदार्थों को प्रकाशित करती हैं वैसे ही चैतन्य अदृश्य है किन्तु सब का प्रकाशक है।

११. अपनी ध्यानावस्था में जिस आनन्द की आपने उपलब्धि की है, यदि वह जागने पर विलुप्त हो जाता है तो वह पूर्ण आनन्द नहीं कहलाएगा। जो पूर्ण आनन्द है वह सदा बना रहने वाला होता है।

१२. उपर्युक्त आनन्द की लघु छटा आपने आनन्दमय कोश के द्वारा आत्मा की अभिव्यक्ति से पाया था।

१३. जैसे हम स्वप्न-काल में उपस्थित रहते हैं और स्वप्न के अवसान पर भी। वैसे ही परमात्मा सृष्टि-काल में उपस्थित रहता है और सृष्टि के ध्वंस के उपरान्त भी।

१४. विशुद्ध चैतन्य रूपी चित्रपट पर अङ्कित चित्रावली को ही सृष्टि कहते हैं। अथवा यों समझिए कि जो विशुद्ध चैतन्य है, वह दर्पण है और उसकी छाया जो है, वह सृष्टि है।

१५. दर्पण से पृथक् प्रतिबिम्ब की कोई सत्ता नहीं, दर्पण को हटा लें तो प्रतिबिम्ब भी लुप्त हो

जाएगा। वैसे ही मन के फैलाव से ही संसार का विस्तार है। मनोलय के साथ संसार अपने कारण में समा जाता है।

१६. क्योंकि ब्रह्म निरन्तर पूर्ण है, यह सृष्टि उसके बाहर कैसे हो सकती है अर्थात् यह सृष्टि भी ब्रह्म में निहित है।

१७. अपने आत्मा को भूल बैठना आत्महत्या कही जाएगी।

१८. वेदान्त, राजयोग, भक्ति-योग और कुण्डलिनी योग का लक्ष्य है क्रमशः आत्मसाक्षात्कार, ईश्वर के साथ संयोग, ईश्वर में अधिवास और शिव-शक्ति का सम्मिलन।

१९. जैसे आकृतियों के आवागमन से दर्पण अछूता और अप्रभावित रहता है वैसे ही सृष्टि के उत्थान-पतन से ब्रह्म में कोई विकार नहीं आता।

२०. आपकी आँखों के सामने से एक के बाद दूसरे दृश्य गुजरते जाते हैं और यदि आप उन दृश्यों के बीच जो खाली स्थान है, उन्हें देखना चाहते हैं तो आपको दृश्यों से अपनी आँखें हटा कर खाली स्थानों पर लगानी पड़ेंगी। वैसे ही मन के सामने जो विषय आते-जाते हैं, उन सब से हटा कर मन को जिस खाली स्थान पर टिकाया जाएगा, वही आत्मा है।

२१. जाग्रतावस्था का वह क्षण जो विचारों से रहित होता है, समाधि से उपमेय है। लेकिन यह

सेकण्ड के भी सूक्ष्मांश तक स्थिर रहता है, अतः कोई इसका ख्याल नहीं करते।

२२. मन की सीमा में बद्ध जो संसार है वह ईश्वर ही है।

२३. 'जीने के लिए मरो' यह साधक का सिद्धान्त होता है जबकि 'मरने के लिए जिओ' यह संसारी जनों का सिद्धान्त है।

२४. जैसे किरणें सूर्य से, स्फुलिंग अग्नि से और तरङ्ग सागर से आते हैं वैसे ही जीव परब्रह्म से प्रसूत हैं।

२५. जैसे आप जीवाणुओं और रक्ताणुओं को अणुवीक्षण यन्त्र से देखते हैं वैसे ही आत्मा को सूक्ष्म बुद्धि से देखा जाता है।

२६. अभिमान, देहाध्यास, स्वार्थ और अविद्या —ये सब पाप हैं।

२७. शंका करना पाप है। ईश्वर को भुला बैठना मृत्यु है।

२८. सत्कर्म-रूपी सुन्दर फूल से आत्मज्ञान-रूपी परिपक्व फल की उत्पत्ति होती है।

२९. जबकि मानव में पशुता का भाव विनष्ट हो जाता है, उसमें मानवता जाग्रत होती है।

३०. विश्वजनीन सिद्धान्त किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं बने। यह हर व्यक्ति के साथ उतना

ही पक्षपात करता है जितने का वह हकदार है।

३१. निःस्वार्थ-साधना के चतुर्दिक ही पूर्णानन्द का निवास है।

३२. अकेलापन में दुःख उठाना कहीं अच्छा है; पर बुरे संग में रहना अच्छा नहीं।

३३. आपकी चेतना उस दिव्याग्नि की भाँति है जो आपको जलाती है जब आप बुरे कर्म करते हैं।

३४. ईश्वर और मनुष्य के बीच जो गहरी खाई है उसे प्रार्थना से पाट दिया जाता है।

३५. जीवन में त्रुटियां किए बिना कोई रह नहीं सकता, अतः इसे लेकर घोर प्रायश्चित करने बैठ जाना बेकार है। इसे भूल जाइए, केवल जो आपके कटु अनुभव हुए हैं, उन्हें याद रखिए।

३६. मनुष्य के पूर्वापर प्रारब्धों का निश्चय परमात्मा ही करता है। उसे क्रियाशील भी परमात्मा ही करता है जबकि अज्ञानी मनुष्य सोचता है कि सब कुछ मैं ही कर रहा हूँ।

३७. यदि आप अहंकार और सब कामनाओं से रहित हो जायें तो फिर आपके पुनर्जन्म और पुनर्मृत्यु का सवाल ही नहीं पैदा होता।

३८. जीवन्मुक्त वह है जो अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में विश्राम करता है।

३९. मैं सर्वदा 'ज्ञाता' हूँ। मैं कदापि 'ज्ञातव्य' नहीं।

४०. अपना देहात्मभाव छोड़ दीजिए तथा विश्वात्मभाव को धारण कीजिए।

४१. इस संसार में सब कुछ दुःखदर्दपूर्ण और विनश्वर है, यहाँ सब कुछ अनात्मा है, इस लिए सदा आनन्दस्वरूप परमात्मा में निष्ठा बनाइए।

४२. जो सन्तुष्ट और परिशान्त है वही सुखी है।

४३. आनन्द सर्वदा अन्तरात्मा से प्रकट होता है, बाह्य पदार्थों से नहीं।

४४. आनन्द का अवतरण तब होता है जबकि जीव परमात्मस्वरूप में विलीन होता है।

* समाप्त *

—:o:—

# योग वेदान्त

## (हिन्दी मासिक पत्र)

संस्थापक—श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती
सम्पादक—श्री स्वामी चन्द्रशेखरानन्द सरस्वती,
वार्षिक चंदा : ३ रु० ७५ पैसे; एक प्रति ३५ पैसे
(वी० पी० से भेजने का नियम नहीं है।)

यह पत्र शिवानन्द साहित्य का अनमोल रत्न है। "योग वेदान्त आरण्य अकादमी" का मुख पत्र होने से इसमें सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, योग और वेदान्त विषयक सुबोधगम्य सामग्री रहती है।

योग के जटिल अर्थ को साधारण जन समाज में सरल रीतियों से समझाने के लिए यह उत्तम माध्यम है। अपने पवित्र विचारों को लेकर यह पत्र नवीन आध्यात्मिक युग का शंख प्रघोषित करता है।

इस पत्र में सर्व साधारण के लेखों को प्रकाशित नहीं किया जाता है। किन्तु अनुभव के आधार पर जो लेख लिखे गए हों और जिनके विचारों की पृष्ठभूमि ठोस और प्रामाणिक हो, ऐसे लेखों को ही इस पत्र में प्रकाशित किया जाता है। जीवनोपयोगी व्यावहारिक सिद्धान्त को प्रकट करने वाले लेख पत्र में अवश्य प्रकाशित किये जाते हैं।

यह पत्र किसी सम्प्रदाय विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं करता, किन्तु विश्वात्म-भावना के उद्देश्य को अंगीकार कर, केवल उसी सिद्धान्त का हर रीति से प्रतिपादन करता है।